प्रकाशन तिथि : 26 अप्रैल 2018, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 36, अंक 10, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

ISSN 2454 - 5163

श्री 1008 दिगम्बर जैन विद्यमान बीस तीर्थंकर जिनालय, तीर्थधाम सिद्धायतन–द्रोणगिरि, जिला–छतरपुर (म.प्र.)
(दिनांक 20 मई से 6 जून तक लगने वाले शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (417)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10200**

मुक्ति का उपाय

आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को जाने वह मोक्ष का कारण है... और आत्मा आत्मा को नहीं जान सकता - यह मान्यता संसार का कारण है। धर्मी जानता है कि स्व-पर को जाननेरूप सम्यग्ज्ञानरूप से परिणमित होना ही मेरा कार्य है; अज्ञानरूप से परिणमित होने का मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे शुद्ध आत्मस्वभाव को जानकर उसमें ज्ञान को एकाग्र किया वहाँ समग्र जैनशासन आ गया। आत्मा जहाँ अपने स्वभावरूप से परिणमित हुआ वहाँ मोह-राग-द्वेषादि शत्रु विलीन हो गये, इसलिये उसमें जैनशासन आ गया।

यह भगवान आत्मा वचनगोचर या विकल्पगोचर नहीं है; किन्तु ज्ञानगोचर है और वह भी अन्तरोन्मुख ज्ञान द्वारा ही गोचर है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके अपने आत्मा को लक्ष्य में लेना सो जैनधर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी रीति से जैनधर्म नहीं होता और ऐसे जैनधर्म के बिना कभी किसी को कहीं किसी प्रकार मुक्ति नहीं होती।

– आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 516

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 36 (वीर नि. संवत् - 2544) 417 अंक : 10

चेतन निज भ्रम तैं...

चेतन निज भ्रम तैं भ्रमत रहै।। टेक।।
आप अभंग तथापि अंग के संग महा दुःख पुंज बहै।
लोहपिंड संगति पावक ज्यों दुर्धर घन की चोट सहै।।
चेतन निज भ्रम तैं भ्रमत रहै।।1।।
नामकर्म के उदय प्राप्त नर नरकादिक परजाय धरै।
तामें मान अपनपो विरथा जन्म-जरा-मृत पाय डरै।।
चेतन निज भ्रम तैं भ्रमत रहै।।2।।
कर्त्ता होय राग-रुष ठानै पर को साक्षी न रहत यहै।
व्यापक-व्याप्य भाव बिन किमिकर, पर को करता होत यहै।।
चेतन निज भ्रम तैं भ्रमत रहै।।3।।
जब भ्रमनींद त्याग निज में निज निज हित हेत सम्हारत है।
वीतराग-सर्वज्ञ होत तब भागचन्द हित सीख कहै।।
चेतन निज भ्रम तैं भ्रमत रहै।।4।।

– कविवर पण्डित भागचंदजी

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित एवं
श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिग.जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्वारा आयोजित

52वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर

दिनांक 20 मई 2018 से 6 जून 2018 तक

- आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन का प्रसारण।
- डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना आदि अनेक आत्मार्थी विद्वानों का प्रवचन, कक्षाओं के माध्यम से भरपूर लाभ।
- पाठशाला के अध्यापकों को बालबोध पाठमालायें एवं वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं के अध्यापन हेतु विशेष प्रशिक्षण।
- देशभर के अलग-अलग प्रान्तों से पधार रहे साधर्मीजनों का मेला।
- श्री टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश लेने हेतु अपूर्व अवसर।
- बालकों हेतु डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया मुम्बई द्वारा विशेष कक्षायें।

आप सभी को शिविर में पधारने हेतु हार्दिक आमंत्रण है।

श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धांत महाविद्यालय हेतु छात्रों का चयन इसी प्रशिक्षण शिविर में होता है; अत: महाविद्यालय में प्रवेश हेतु अधिक से अधिक छात्रों को प्रेरणा देकर शिविर में भिजवायें।

संपर्क सूत्र -

(1) ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.) फोन-0141-2705581, 2707458;
Email - ptstjaipur@yahoo.com
(2) तीर्थधाम सिद्धायतन, मु.पो.-द्रोणगिरी, ग्राम-सेंधपा, तह.-बड़ामलहरा, जिला-छतरपुर 471311 (म.प्र.); मुन्नालाल जैन (मंत्री) - 9406569839, पण्डित शुभम शास्त्री - 834938156, कार्यालय - 7389242836

सम्पादकीय

कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन

(गतांक से आगे ...) (नम्बर 28-29)

ज्ञानी और अज्ञानी की पहिचान

(४४-४५)

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ।।
कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ।।

(हरिगीत)

मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी।
यह मान्यता जब तक रहे अज्ञानि हैं तब तक सभी ।।
करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को।
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ।।

जब तक इस आत्मा की ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों, मोह-राग-द्वेषादि भावकर्मों एवं शरीरादि नोकर्मों में आत्मबुद्धि रहेगी अर्थात् 'यह मैं हूँ और कर्म-नोकर्म मुझ में हैं' - ऐसी बुद्धि रहेगी, ऐसी मान्यता रहेगी, तब तक यह आत्मा अप्रतिबुद्ध है, अज्ञानी है।

जो आत्मा कर्म के परिणाम को एवं नोकर्म के परिणाम को नहीं करता है; किन्तु मात्र जानता है, वह ज्ञानी है।

ये गाथायें समयसार शास्त्र की १९वीं एवं ७५वीं गाथायें हैं। इनमें अज्ञानी और ज्ञानी का स्वरूप समझाया गया है। १९वीं गाथा में अज्ञानी का और ७५वीं गाथा में ज्ञानी का स्वरूप समझाया है।

'ये ही मैं हूँ' – इसप्रकार की मान्यता का नाम **अहंबुद्धि है, एकत्वबुद्धि** है और 'ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ' – इसप्रकार की मान्यता का नाम **ममत्वबुद्धि है, स्वामित्वबुद्धि** है। इसीप्रकार 'मैं इनका कर्ता हूँ, ये मेरे कर्ता हैं' – इसप्रकार की मान्यता का नाम **कर्तृत्वबुद्धि** है और मैं इनका भोक्ता हूँ, ये मेरे भोक्ता हैं – इसप्रकार की बुद्धि का नाम **भोक्तृत्वबुद्धि** है।

इसप्रकार कर्म-नोकर्म में एकत्वबुद्धि एवं ममत्वबुद्धि अप्रतिबुद्धता है, अज्ञान है और **भगवान आत्मा को इनसे भिन्न निजरूप जानना प्रतिबुद्धता है, ज्ञान है।**

इसप्रकार त्रिकाली ध्रुव आत्मा में अपनापन होना और उससे भिन्न पदार्थों में अपनापन नहीं होना ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान है और आत्मा से भिन्न पदार्थों में अपनापन होना ही मिथ्यात्व है अर्थात् मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान है।

१९वीं गाथा में यह कहा गया है कि जबतक यह आत्मा कर्म और नोकर्म में अहंबुद्धि – एकत्वबुद्धि, ममत्वबुद्धि रखेगा, तबतक अज्ञानी रहेगा और ७५वीं गाथा में कहा है कि **कर्म और नोकर्म में कर्तृत्वबुद्धि नहीं रखनेवाला ज्ञानी है।**

अज्ञानी और ज्ञानी को परिभाषित करते हुए दोनों ही गाथाओं में कर्म और नोकर्म की बात तो समान ही कही है, परन्तु १९वीं गाथा में अज्ञानी का स्वरूप समझाते हुए एकत्वबुद्धि और ममत्वबुद्धि की बात की है और ७५वीं गाथा में ज्ञानी का स्वरूप समझाते हुए कर्तृत्वबुद्धि के निषेध की बात कर रहे हैं। यह अंतर अधिकारों के विभाजन के कारण आया है।

कर्म और नोकर्म में एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व रखनेवाला अज्ञानी है और **इनमें एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व न रखनेवाला; मात्र जाननेवाला ही ज्ञानी है।**

कर्म में द्रव्यकर्म और भावकर्म – दोनों आ जाते हैं और नोकर्म में शरीरादि संयोगी पदार्थ आते हैं। द्रव्यकर्म का उदय भावकर्म और नोकर्म के रूप में प्रतिफलित होता है।

आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेष के भावों में घातिया कर्मरूप द्रव्यकर्म का उदय निमित्त होता है और शरीरादि बाह्य पदार्थों के संयोग में अघातिया कर्मरूप द्रव्यकर्म का उदय निमित्त होता है।

इसप्रकार द्रव्यकर्मों के उदयानुसार होनेवाले **मोह-राग-द्वेष के भावरूप भावकर्म में तथा पुण्य-पाप के उदयानुसार मिलनेवाले अनुकूल-प्रतिकूल – सभी शरीरादि व स्त्री-पुत्रादि, मकानादि, देश-नगरादि संयोगरूप नोकर्म में एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व ही अज्ञान है, मिथ्यात्व है, संसारमार्ग है।**

तथा इनमें एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभाव, सहज ज्ञाता-दृष्टाभाव ही ज्ञान है, सम्यक्त्व है, मुक्तिमार्ग है।

प्रश्न – क्या पाप के उदय से भी शरीरादि, स्त्री-पुत्रादि, धन-धान्यादि, देश-नगरादि मिलते हैं ?

उत्तर – क्यों नहीं ? स्वस्थ-सुन्दर शरीर, अनुकूल पत्नी, सुयोग्य पुत्र, आज्ञाकारी सेवक और सर्वप्रकार अनुकूल गृह, ग्राम, नगर और देशादि यदि पुण्योदय से प्राप्त होते हैं तो अस्वस्थ-असुन्दर शरीर, प्रतिकूल पत्नी, अयोग्य पुत्र, अविश्वसनीय सेवक और प्रतिकूल गृह, ग्राम, नगर और देशादि पापोदय से प्राप्त होते हैं। ये सभी नोकर्म में आ जाते हैं।

इसप्रकार **मोह-राग-द्वेषादि विकारीभावों और शरीरादि एवं देश-नगरादि संयोगों में कर्तृत्वबुद्धि नहीं होना और इनके ज्ञाता-दृष्टा भाव से परिणमित होना ही ज्ञान है** तथा इसप्रकार के ज्ञानभाव के परिणमित आत्मा ज्ञानी है। ज्ञानी की पहिचान का यही चिह्न है, ज्ञानी इसी चिह्न से पहिचाने जाते हैं।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, बंध, संस्थान आदि तो पुद्गलपरिणाम हैं ही; किन्तु **मोह, राग, द्वेष, सुख-दुःख आदि भी पुद्गलपरिणाम हैं और इनका कर्ता-भोक्ता निश्चय से पुद्गल ही है, आत्मा नहीं।**

हाँ, आत्मा इनके जाननेरूप ज्ञान का कर्ता अवश्य है, पर इनका नहीं; क्योंकि ज्ञान आत्मा का ही परिणाम है, इस कारण आत्मा इनके ज्ञान का कर्ता है।

यह अज्ञानी आत्मा या तो परपदार्थों के ज्ञान का कर्ता आत्मा को नहीं मानते या फिर उन परपदार्थों के कर्ता-भोक्ता स्वयं को, आत्मा को मान लेते हैं। दोनों ही मान्यतायें मिथ्या हैं।

जीवन-मरण अर दुःख-सुख

(४६-५२)

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कदं तेहिं॥

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं॥

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

(हरिगीत)

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन॥

निज आयुक्षय से मरण हो – यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं?॥

निज आयुक्षय से मरण हो – यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं?॥

मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन!॥

सब आयु से जीवित रहें – यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं?॥

सब आयु से जीवित रहें – यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावे वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं?॥

मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो?॥

जो जीव यह मानता है कि मैं पर-जीवों को मारता हूँ और पर-जीव मुझे मारते हैं, वह मूढ़ है, अज्ञानी है। इससे विपरीत मानने वाला ज्ञानी है। तात्पर्य यह है कि **ज्ञानी यह मानता है कि न मैं किसी को मार सकता हूँ और न कोई मुझे मार सकता है।**

जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। तुम परजीवों के आयुकर्म को तो हरते नहीं हो; फिर तुमने उनका मरण कैसे किया? – **यह बात गंभीरता से विचार करने योग्य है।**

जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। परजीव तेरे आयुकर्म को तो हरते नहीं है तो उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ? अतः **अपने मरण का दोष पर के माथे मढ़ना अज्ञान ही है।**

जो जीव यह मानता है कि मैं पर-जीवों को जिलाता (रक्षा करता) हूँ और पर-जीव मुझे जिलाते (रक्षा करते) हैं; वह मूढ़ है, अज्ञानी है और इसके विपरीत मानने वाला ज्ञानी है। तात्पर्य यह है कि **एक जीव दूसरे जीव के जीवन-मरण और सुख-दुख का कर्त्ता-धर्त्ता नहीं है, अज्ञानी जीव व्यर्थ ही पर का कर्त्ता-धर्त्ता बनकर दुखी होता है।**

जीव आयुकर्म के उदय से जीता है – ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। तुम पर-जीवों को आयुकर्म तो देते नहीं तो तुमने उनका जीवन (रक्षा) कैसे किया ?

जीव आयुकर्म के उदय से जीता है – ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं। पर-जीव तुझे आयुकर्म तो देते नहीं हैं तो उन्होंने तेरा जीवन (रक्षा) कैसे किया?

जो यह मानता है कि मैं परजीवों को सुखी-दुःखी करता हूँ, वह मूढ़ है, अज्ञानी है। ज्ञानी इससे विपरीत मानता है। ज्ञानी जानता है कि लौकिक सुख व दुःख तो जीवों को अपने पुण्य-पाप के अनुसार होते हैं, वे तो उनके स्वयं के कर्मों के फल हैं। उनमें किसी दूसरे जीव का रंचमात्र भी कर्त्तृत्व नहीं है।

उक्त सात गाथायें समयसार परमागम के बंधाधिकार की २४७ से २५२वीं गाथायें हैं। इनमें कर्मबंध के मूल कारणों की मीमांसा की गई है, **गंभीरतम प्रश्न उठाये गये हैं और उनके तर्कसंगत उत्तर दिये गये हैं।**

यह चर्चा इसके पहले भी हुई है और आगे भी जब-जब इस प्रकरण पर बात चलेगी, तब-तब होगी। यह ऐसा गंभीर विषय है कि जिस पर जितनी बार भी चर्चा हो, कम है।

प्रस्तुत चर्चा का आधार समयसार का सार और समयसार अनुशीलन भाग-३ है।

यह एक ऐसा विषय है कि जिस पर स्थान-स्थान एवं समय-समय पर गोष्ठियाँ की जानी चाहिए, व्याख्यान कराये जाने चाहिए।

उक्त गाथाओं में आचार्यदेव ने उक्त मान्यतावालों को तीन-तीन बार महान उपाधि दी है कि **सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो – ऐसा माननेवाला मूर्ख है, अज्ञानी है और ज्ञानी तो इससे विपरीत है।**

इन सात गाथाओं में चार-चार बार यह बात कही है कि यह बात जिनेन्द्र भगवान ने कही है। बातें तो बहुत होती हैं, लेकिन **कुछ बातें बातों से स्वीकार नहीं होतीं, कहनेवाले के वजन से स्वीकृत होती हैं।**

कोई जीव किसी को मारता और बचाता नहीं है – यह बात इतनी वजनदार है कि पण्डित हुकमचन्द तो क्या, आचार्य कुन्दकुन्द भी कहें तो

लोग माननेवाले नहीं हैं। यह बात कुन्दकुन्दाचार्य जानते थे, इसलिए उन्होंने बार-बार यह कहा – यह बात मेरी कही हुई नहीं है।

यह बात तीर्थंकर भगवान ने समवशरण में बैठकर सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, चार ज्ञान के धारी गणधरदेव की उपस्थिति में भरी सभा/समवशरण में कही थी।

उक्त सम्पूर्ण कथन यह बात स्पष्ट करने के लिए किया गया है कि जब मैं दूसरों का कुछ करता ही नहीं हूँ, तब उसके जीवन-मरण और सुखी-दुखी होने से मुझे कर्म का बंध कैसे हो सकता है ? मुख्य बात तो यह है कि **जो अपराध मेरे से हुआ ही नहीं, उसका बंध मुझे क्यों हो ?**

लोक में भी यही न्याय है कि जब किसी का मरण न हो और उसके मारने के अपराध में किसी को फाँसी लगे – यह कैसे हो सकता है ?

वकील जज से कहता है कि जिस आदमी को मारने के अपराध में तुम उसे फाँसी की सजा दे रहे हो, वह तो जिन्दा है। जब मरण हुआ ही नहीं तो फिर सजा किस बात की ?

आचार्यदेव भी वही तर्क यहाँ दे रहे हैं कि जब एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कुछ भला-बुरा, जीवन-मरण करता ही नहीं है तो अन्य जीवों के जीवन-मरण से मुझे बंध क्यों हो ? वह तो मरा ही नहीं, यदि मरा भी है तो भी मेरे कारण नहीं मरा तो मुझे बंध क्यों ?

लोक में भी कहावत है कि कौआ के कोसे ढोर नहीं मरते; क्योंकि यदि कौओं के कोसने से ढोर मर जाते होते तो एक भी ढोर जिन्दा नहीं बचता। कोसनेवाले कौओं की कमी थोड़े ही है।

मैं तो ऐसा भी कहता हूँ कि कौआ के कोसे ढोर नहीं मरते और अम्मा के आशीर्वाद से बेटे पास नहीं होते।

ऐसी कौन-सी माता है, जो अपने बेटों को फर्स्ट-क्लास आने का आशीर्वाद नहीं देती। जब सच्चे दिल से हर माँ भरपूर आशीर्वाद देती है, फिर भी बेटे क्यों फैल होते हैं ?

गोल्डमैडलिस्ट जानता है कि अम्मा के आशीर्वाद से कुछ नहीं हुआ। मैंने जो दिन-रात पढाई की है, उसकी वजह से यह कमाल हुआ है; लेकिन व्यवहार की भाषा में ऐसा ही बोला जाता है। ऐसा नहीं कहा जाता है कि तेरे आशीर्वाद से क्या होता है ?

बोलने की भाषा ऐसी ही है और यह बात अम्मा भी जानती है कि मेरे आशीर्वाद से कुछ नहीं हुआ। मेरा दूसरा बेटा इसी का छोटा भाई फैल हो गया और आशीर्वाद तो मैंने उसे भी कम नहीं दिया था।

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कौआ के कोसे ढोर नहीं मरते और अम्मा के आशीर्वाद से कोई पास नहीं होता। **अपनी-अपनी योग्यता और अपनी मेहनत से ही सबकुछ होता है; क्योंकि दो द्रव्यों के बीच में वज्र की दीवार खड़ी है।**

जब मेरे कहने से परद्रव्य में कुछ होता ही नहीं तो उसके कारण मुझे बंध भी क्यों हो? वह हमारे कारण मरा ही नहीं, फिर हमें बंध क्यों हो? अरे भाई ! **जो बंध हुआ है, वह तो रागादिभाव के कारण हुआ है।**

यदि ऐसा है तो शास्त्रों में ऐसा क्यों लिखा है कि किसी जीव को मत मारो ? अरे भाई ! यह तो भाषा है, उसका वास्तविक अर्थ यह है कि मारने का भाव मत करो; क्योंकि मारने की क्रिया मारने के भाव के बिना नहीं होती।

इसलिए अगले कलश में लिखा है कि **तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां** – फिर भी ज्ञानी जीव को अनर्गल प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए; क्योंकि जो क्रिया होती है, वह भावपूर्वक ही होती है और **अज्ञानी की क्रिया तो विपरीत मान्यतापूर्वक ही होती है।**

इसलिए मान्यता और भाव, बंध के कारण हैं; क्रिया रंचमात्र भी बंध का कारण नहीं है।

इन गाथाओं का भाव आत्मख्याति में अत्यन्त संक्षेप में इसप्रकार किया गया है –

''मैं परजीवों को मारता हूँ और परजीव मुझे मारते हैं – ऐसा अध्यवसाय (मिथ्या अभिप्राय) नियम से अज्ञान है। वह अध्यवसाय जिसके है, वह अज्ञानीपने के कारण मिथ्यादृष्टि है और वह अध्यवसाय जिसके नहीं है, वह ज्ञानीपने के कारण सम्यग्दृष्टि है।

वस्तुत: जीवों का मरण तो अपने आयुकर्म के क्षय से ही होता है; क्योंकि अपने आयुकर्म के क्षय के अभाव में मरण होना अशक्य है तथा किसी के द्वारा किसी के आयुकर्म का हरण अशक्य है; क्योंकि वह आयुकर्म अपने उपभोग से ही क्षय होता है।

इसप्रकार कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का मरण किसी भी प्रकार से नहीं कर सकता है। इसलिए मैं परजीवों को मारता हूँ और परजीव मुझे मारते हैं – ऐसा अध्यवसाय ध्रुवरूप से अज्ञान है।

इसीप्रकार परजीवों को मैं जिलाता हूँ और परजीव मुझे जिलाते हैं – इसप्रकार का अध्यवसाय भी ध्रुवरूप से अज्ञान है। यह अध्यवसाय जिसके है, वह जीव अज्ञानीपने के कारण मिथ्यादृष्टि है और जिसके यह अध्यवसाय नहीं है, वह ज्ञानीपने के कारण सम्यग्दृष्टि है।

जीवों का जीवन अपने आयुकर्म के उदय से ही है; क्योंकि अपने आयुकर्म के उदय के अभाव में जीवित रहना अशक्य है। अपना आयुकर्म कोई किसी को दे नहीं सकता; क्योंकि वह स्वयं के परिणाम से ही उपार्जित होता है; इसकारण कोई किसी भी प्रकार से किसी का जीवन नहीं कर सकता है।

इसलिए मैं पर को जिलाता हूँ और पर मुझे जिलाते हैं – इसप्रकार का अध्यवसाय ध्रुवरूप से अज्ञान है।''

इन गाथाओं में तीर्थंकर परमात्मा की साक्षीपूर्वक यह बात अत्यन्त स्पष्टरूप से कही गई है कि जो व्यक्ति यह मानता है कि मैं दूसरों को मारता हूँ या दूसरे मुझे मारते हैं; मैं दूसरों की रक्षा करता हूँ या दूसरे मेरी रक्षा करते हैं; मैं दूसरों को सुखी-दु:खी करता हूँ या दूसरे मुझे सुखी-दु:खी करते हैं; वह व्यक्ति मूढ है, अज्ञानी है; तथा ज्ञानियों की मान्यता इससे विपरीत होती है। **तात्पर्य यह है कि एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता–**

धर्त्ता-हर्त्ता मानना अज्ञान है, मिथ्यात्व है।

इस महान सिद्धान्त को जगत के समक्ष रखते हुए आचार्यदेव ने करणानुयोग को आधार बनाकर जो वजनदार युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं, वे अपने आप में अद्‌भुत हैं, अकाट्य हैं।

अपनी बात को सिद्ध करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जब सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, चार ज्ञान के धारी गणधरदेव की उपस्थिति में तीर्थंकर परमात्मा अरहंतदेव ने अपनी दिव्यध्वनि में डंके की चोट पर यह बात कही है कि जगत का प्रत्येक प्राणी अपने आयुकर्म के क्षय से मरण को प्राप्त होता है और आयुकर्म के उदय से ही जीवित रहता है तो फिर कोई किसी के जीवन-मरण का उत्तरदायी कैसे हो सकता है ?

जब तुम किसी के आयुकर्म का हरण नहीं कर सकते हो तो फिर उसे मार भी कैसे सकते हो ? इसीप्रकार जब कोई अन्य व्यक्ति तुम्हारे आयुकर्म का हरण नहीं कर सकता है तो वह तुम्हें भी कैसे मार सकता है?

यही बात जीवन के संदर्भ में भी कही जा सकती है। जब प्रत्येक प्राणी अपने आयुकर्म के उदय से जीवित रहता है और जब तुम किसी को आयुकर्म दे नहीं सकते हो तो फिर तुम उसकी रक्षा भी किसप्रकार कर सकते हो ? इसीप्रकार जब कोई अन्य व्यक्ति तुम्हें आयुकर्म नहीं दे सकता है तो फिर वह तुम्हारी रक्षा भी किसप्रकार कर सकता है ?

इसीप्रकार सुख-दु:ख के संदर्भ में भी घटित कर लेना चाहिए।

प्रत्येक जीव अपने शुभकर्म के उदयानुसार लौकिक सुख प्राप्त करता है, अनुकूल संयोग प्राप्त करता है और अपने अशुभकर्म के उदय के अनुसार दु:ख प्राप्त करता है, प्रतिकूल संयोग प्राप्त करता है। यह परमसत्य जिनेन्द्र भगवान की वाणी में आया है।

जब तुम किसी को भी शुभाशुभकर्म नहीं दे सकते हो तो उसे सुखी-दु:खी भी कैसे कर सकते हो ? इसीप्रकार जब कोई तुम्हें शुभाशुभ कर्म

नहीं दे सकता है तो वह तुम्हें भी सुखी-दु:खी कैसे कर सकता है?

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दु:ख एवं जीवन-मरण का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता स्वयं ही है, अपने भले-बुरे का उत्तरदायी भी पूर्णत: स्वयं ही है।

इस परमसत्य से अपरिचित होने के कारण ही अज्ञानीजन अपने सुख-दु:ख एवं जीवन-मरण का कर्त्ता-हर्त्ता अन्य जीवों को मानकर अकारण ही उनसे राग-द्वेष किया करते हैं। अज्ञानी के यह राग-द्वेष-मोह परिणाम ही उसके अनन्त दु:खों के मूल कारण हैं।

पर में ममत्व एवं कर्तृत्वबुद्धि से उत्पन्न इन मोह-राग-द्वेष परिणामों को जड़मूल से उखाड़ फैंकने वाले इस महासिद्धान्त को जगत के सामने रखकर आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने हम सबका महान उपकार किया है।

जगतजनों के जीवन का सर्वाधिक समय इसी चिंता और आकुलता-व्याकुलता में जाता है कि कोई हमें मार न डाले, दु:खी न कर दे; मैं पूर्ण सुरक्षित रहूँ, जीवित रहूँ, सुखी रहूँ।

अपनी सुरक्षा के उपायों में ही हमारी सर्वाधिक शक्ति लग रही है, बुद्धि लग रही है, श्रम लग रहा है। अधिक क्या कहें – हमारा सम्पूर्ण जीवन ही इसी के लिए समर्पित है, इसी चिन्ता में बीत रहा है।

पड़ौसी पड़ौसी से आतंकित है, आशंकित हैं; एक-दूसरे के विरुद्ध षडयंत्र रचने में संलग्न है, सुरक्षा के नाम पर विनाश की तैयारी में मग्न है; निराकुलता और शान्ति किसी के भी जीवन में दिखाई नहीं देती।

इस मूढ़ जगत ने अपनी सुरक्षा के नाम पर संसार के विनाश की इतनी सामग्री तैयार कर ली है कि यदि उसका शतांश भी उपयोग में आ जावे तो सम्पूर्ण मानव जाति ही समाप्त हो सकती है।

आश्चर्य और मजे की बात तो यह है कि **हमने इस मारक क्षमता का विकास सुरक्षा के नाम पर किया है, यह सब अमरता के लिए की गई मृत्यु की ही व्यवस्था है।**

घटिया माल को बढ़िया पेकिंग में प्रस्तुत करने का अभ्यस्त यह

जगत हिंसक कार्यों के लिए भी अहिंसक शब्दावली प्रयोग करने में इतना माहिर हो गया है कि **मछलियाँ मारने का काम भी मत्स्यपालन उद्योग के नाम से करता है,** कीटाणुनाशक (एन्टी वाइटिक्स) दवाओं को भी **जीवनरक्षक दवाइयाँ** कहता है।

इसप्रकार यह जगत हथियारों का अंबार लगाकर अपने को सुरक्षित करना चाहता है; पर भाई हथियार तो मृत्यु के उपकरण हैं, जीवन के नहीं; इस सामान्य तथ्य की ओर आपका ध्यान क्यों नहीं जाता ?

हथियारों के प्रयोग से आजतक किसी का जीवन सुरक्षित तो हुआ नहीं, मौत का ताण्डव अवश्य हुआ है।

इससे तो यही सिद्ध होता है कि शस्त्र सुरक्षा के साधन नहीं हैं; अपितु मौत के ही मौन आमंत्रण हैं; क्योंकि जिनके पास हथियार नहीं होते, वे हथियारों से नहीं मरते; पर **जिनके पास हथियार होते हैं, वे प्राय: हथियारों से ही मारे जाते हैं।**

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि हथियार सुरक्षा के साधन नहीं, मौत के ही सौदागर हैं। फिर भी कुछ लोग कहते हैं कि हमारे हथियारों के भय से हम पर कोई आक्रमण करने की हिम्मत ही नहीं करेगा, अत: हम सुरक्षित रहेंगे। ऐसा सोचनेवालों से मेरा कहना यह है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि तुम्हारे शस्त्रों के भय से तुम पर कोई आक्रमण नहीं करेगा; पर **जब तुम स्वयं बीमार होकर मरोगे, तब क्या होगा ?**

इस आशंका से आकुल-व्याकुल इस जगत ने अनेक प्रकार की औषधियों का निर्माण किया है। 'कोई मार न दें' – इस आशंका से एक प्रकार की गोलियाँ (अणुबम) बनाई हैं तो 'बीमारियों से स्वयं ही न मर जावें' – इस भय से दूसरे प्रकार को गोलियों (दवाइयाँ) बनाई हैं। जीवन रक्षक (एन्टीबाइटिक्स) दवाइयों का उत्पादन इसकी इसी आकांक्षा का परिणाम है।

इसप्रकार यह स्वयं को गोलियों के बल पर मरण भय से मुक्त करना

चाहता है, पर आजतक तो इसमें किसी को सफलता प्राप्त हुई नहीं है; क्योंकि अभी तक तो कोई सदेह अमर नहीं हो पाया है। लाखों लोगों को दम तोड़ते हम प्रतिदिन देखते ही हैं।

इसीप्रकार सुखी रहने और दु:ख दूर करने के लिए भी इसने दर्दनाशक दवाइयों का निर्माण किया है। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना, सभी प्रकार के भोगों को भोगना एवं भोगसामग्री इकट्ठी करना भी इसकी इसी आकांक्षा के परिणाम हैं।

पर इतना सब-कुछ कर लेने के बाद भी न तो यह अमर ही हो सका है और न सुखी ही; क्योंकि अमर और सुखी होने का जो रास्ता इस जगत ने चुना है, वह सम्यक् नहीं है। **न तो शस्त्र सुरक्षा के साधन ही हैं और न दवाइयाँ दु:ख दूर करने में समर्थ हैं; क्योंकि न तो वे लोग सुरक्षित ही दिखाई देते हैं, जो शस्त्रों की सुरक्षा में रहते हैं और न वे सुखी ही दिखाई देते हैं, जो प्रतिदिन दस-पाँच गोलियाँ तो खाते ही हैं।**

शस्त्रों से सुरक्षा की बात तो स्पष्ट हो चुकी है, रही बात जीवन रक्षक दवाइयों से सुरक्षा एवं दर्दनाशक दवाइयों से सुखी होने की बात।

सो भाई ! भारतवर्ष में ऐसे अनेक नग्न दिगम्बर संत मिलेंगे, जिन्होंने जीवन में एक भी गोली नहीं खाई होगी। दिन में एक बार शुद्ध सात्त्विक आहार लेनेवाले, दूसरी बार जल का बिन्दु भी ग्रहण नहीं करनेवाले **वीतरागी संत सौ-सौ वर्ष की आयु पर्यन्त पूर्ण स्वस्थ दिखाई देते हैं और अपनी पूर्ण आयु को चलते-फिरते आत्मसाधना में रत रहते आनन्द से भोगते हैं;** जबकि प्रतिदिन अनेक गोलियाँ खानेवाले, दिन-रात भक्ष्य-अभक्ष्य पौष्टिक पदार्थ भक्षण करनेवाले जगतजन भरी जवानी में ही जवाब देने लगते हैं।

इसप्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट है कि न तो हथियार सुरक्षा के साधन हैं, और न ही भोगोपभोग सामग्री तथा औषधियाँ सुखी होने का वास्तविक उपाय है; आयुकर्म का उदय जीवन का आधार है और शुभकर्मों का उदय लौकिक सुखों का साधन है।

(क्रमश:)

छहढाला प्रवचन

सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र का उपदेश

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा।।
काहू की धनहानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषी तैं।।१२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

इसीप्रकार व्रती श्रावक पराई वस्तु नहीं चुराता, परस्त्री से भी अत्यन्त विरक्त रहता है और स्वस्त्री में भी मर्यादित रहता है तथा देशकाल अनुसार परिग्रह की मर्यादा रखता है। यद्यपि स्थूलरूप से हिंसादि पापों का त्याग तो साधारण सज्जन को भी होता है; परन्तु श्रावक के तो नियमपूर्वक उनका त्याग होता है, प्राणनाश का प्रसंग आने पर भी उसमें दूषण नहीं लगने देता, इसप्रकार उसको शुद्धि बढ गई होती है। ज्ञान में, स्थिरता में, शान्ति में, वीतरागता में वह सर्वार्थसिद्धि के देव की अपेक्षा भी आगे बढ गया है, चारित्र की चमक से उसका आत्मा मोक्षमार्ग में शोभित हो रहा है।

देखो ! यह जैनधर्म की श्रावकदशा ! मैं शुद्ध आनन्दचेतना स्वरूप हूँ – ऐसे अनुभवपूर्वक होनेवाले वीतरागभाव की यह बात है। जहाँ अनन्तानुबंधी तथा अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष कषायें सर्वथा छूट गई हैं, वहीं हिंसादि पापों का सच्चा त्याग है और वही सच्चे व्रत हैं। उन्हीं व्रतों में अलौकिक वीतरागी शान्ति होती है। ऐसा पाँचवाँ गुणस्थान नरक और स्वर्ग में नहीं होता, तिर्यंच के पाँचवें गुणस्थान तक की दशा होती है, छठा नहीं होता। मनुष्यगति में सभी (१४) गुणस्थान होते हैं, इसलिए वह उत्तम है।

सम्यक्त्वादि गुणों से जीव की शोभा है, सम्यक्त्व के बाद चारित्र दशा से जीव शोभता है। अहो जीवों! राग में कोई शोभा नहीं है, वीतरागता में ही शोभा है। सम्यग्दर्शन सहित जितनी वीतरागी शुद्धता हुई, उतना निश्चयव्रत है, उसके साथ में अहिंसादि संबंधी जो शुभराग रहा, वह व्यवहारव्रत है। व्रत की भूमिका में वीतरागी देव-गुरु-धर्म की बराबर पहिचान होती है तथा उनके द्वारा कहे गये आत्मस्वरूप के भानसहित सम्यग्दर्शन होता है। इसमें ही जिसकी भूल है, देव-गुरु-धर्म ही जिसका खोटा हो, उसको व्रत कहाँ से होंगे ? कैसे होंगे ? तथा चारित्र भी कैसे होगा ? इसलिए कहा है कि परद्रव्य से भिन्न आत्मस्वरूप की रुचि सो सम्यक्त्व है और अपने स्वरूप का जानना सो सम्यग्ज्ञान है, उसे लाख उपाय करके भी धारण करो तथा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान के उपरान्त परिणाम की शुद्धतानुसार दृढपने चारित्र का पालन करो। हो सके तो मुनि की भूमिका योग्य उत्तम चारित्र पालो, यदि हीनशक्ति हो तो श्रावक के योग्य एकदेशचारित्र पालन करो, उसमें शिथिलता मत रखो।

अपने परिणाम की शुद्धता का विचार किए बिना चारित्र या व्रत तो धारण कर ले, फिर उसमें शिथिलाचार वर्ते – यह जैनधर्म में शोभा नहीं देता। तुझसे विशेष-चारित्र न पल सके तो अल्पचारित्र ही पालना; परन्तु भाई ! बड़ा नाम धारण करके शिथिलाचार द्वारा तू चारित्र को लजाना मत। शुद्धता सहित चारित्र का पालन हो तब तो अत्युत्तम है, पूजनीक है, सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी चारित्रवंत के चरणों में नमता है; किन्तु जहाँ आत्मा का ज्ञान ही नहीं, वहाँ चारित्रदशा कैसी ? ऐसे अज्ञानी के व्रत-तप को तो समयसार गाथा १५२ में बालव्रत और बालतप कहकर मोक्षमार्ग में निषेध किया गया है।

अणुव्रती श्रावक को पंचमगुणस्थान में स्थूल हिंसादि पापों का तो सर्वथा त्याग हो गया है और सूक्ष्म हिंसादि रह गए हैं, उसको भी वह पाप समझता है, उन्हें करने जैसा नहीं मानता, उन पापों का उसे खेद है और

सर्वसंग त्यागी मुनिपने की भावना है। वह अणुव्रती-श्रावक प्राण जावें तो भी पर की वस्तु को नहीं चुराता। संसार संबंधी समस्त परस्त्रियों के प्रति उसका चित्त सर्वथा विरक्त रहता है। परस्त्री के सेवन का विकल्प भी उसके नहीं आता, देवांगना को देखकर भी उसका चित्त नहीं ललचाता - ऐसी निर्विकल्प शान्ति का स्वाद उसके सदा वर्तते हैं।

उसने परिग्रह की ममता त्यागकर उसकी मर्यादा कर ली है, मर्यादा के बाहर किसी परिग्रह की वृत्ति ही उसके नहीं उठती। आजकल तो देखो, धन के लिए लोग कैसी अनीति और अन्याय की प्रवृत्ति कर रहे हैं ? धर्मी-श्रावक को ऐसा नहीं होता, वह स्वर्ण के ढेर देखे, हीरा के टुकड़े देखे, तथापि उन्हें लेने की वृत्ति उसके न उठे, इतनी निष्परिग्रहता उसके हो गई है अर्थात् बाहर में ऐसा त्याग सहज होता है। श्रद्धा-ज्ञान में तो सभी सम्यग्दृष्टियों ने सर्व परद्रव्यों को अपने से सर्वथा भिन्न जाना है, उनमें एक रजकण मात्र का स्वामित्व उनके नहीं रहा, तदुपरान्त स्थिरता से दो कषायों का अभाव होने पर परिग्रह की ममता विशेष छूट गई है, जो मर्यादित परिग्रह है, उसकी अल्प ममता को भी पाप समझता है और शक्ति बढाकर उसका भी त्याग करना चाहता है।

इसप्रकार श्रावक-श्राविका अपने अणुव्रत में दृढ रहते हैं। देखो न, सुदर्शन सेठ के ऊपर कैसे-कैसे कष्ट के प्रसंग आए, तो भी अपने शीलव्रत से वह तनिक भी नहीं डिगे, नहीं डिगे। रानी ने उनके शील को डिगाने के लिए अनेक हाव-भाव करके ललचाया तथापि उन्हें किसी भी प्रकार रंचमात्र विकार नहीं हुआ और वे ब्रह्मचर्य में दृढ रहे। इसीप्रकार सीताजी, चन्दना आदि सतियों ने भी अनेकानेक कुचक्रों में फंसने पर भी महान धैर्य पूर्वक अपने शीलधर्म की सुरक्षा की, जिनके उदाहरण जग प्रसिद्ध हैं। ऐसे महापुरुषों के उदाहरणों से धर्मी जीव अपने व्रतों में दृढता रखता है। प्राण जावें तो चले जावें; किन्तु धर्मी जीव अपने व्रत को खण्डित नहीं होने देता, धर्म से विचलित नहीं होता। **(क्रमशः)**

नियमसार प्रवचन -

आराधना में वर्तने वाला प्रतिक्रमणमय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ८४ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलतः इसप्रकार हैं -

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ।।८४।।

(हरिगीत)

विराधना को छोड़ जो आराधना में नित रहे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए वह स्वयं ही प्रतिक्रमण है।।८४।।

जो जीव विशेषरूप से विराधना छोड़कर आराधना में वर्तता है, वह जीव ही प्रतिक्रमण है; क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय ही है।

(गतांक से आगे....)

समयसार गाथा १२ की टीका में कहा है :-

जइ जिणमयं पवज्जइ ता मा व्यवहारणिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं ।।

यदि तुम जिनमत को प्रवर्त्ताना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय - इन दोनों नयों को मत छोड़ो, क्योंकि व्यवहार बिना तो तीर्थ का - व्यवहारमार्ग का नाश हो जाएगा और निश्चयनय के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जाएगा।

'आत्मा ज्ञानस्वरूपी है' - ऐसी श्रद्धा-ज्ञान-लीनता करना, वह निश्चय है और स्वभाव में न ठहर सके; तब तक अधूरी दशा में राग आता है, वह व्यवहार है। जिसप्रकार का शुभ अथवा अशुभराग आनेवाला है, वही अपनी भूमिकानुसार आता है और उससमय उसप्रकार के निमित्तों के ऊपर लक्ष्य जाता है; उनका ज्यों

का त्यों ज्ञान करना ही व्यवहार है। इसप्रकार दोनों का ज्ञान करना प्रमाण है। दोनों के ज्ञान को मत छोड़ो। यदि व्यवहार का यथार्थ ज्ञान न करे तो व्यवहारमार्ग का नाश होगा। जैसे चौथे गुणस्थान में धर्मीजीव को रागवाली दशा में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग होता है और भक्ति भी उमड़ती है। इन्द्र सम्यक्त्वी होता है और एक भव पश्चात् मोक्ष जानेवाला है - ऐसा उसे स्वयं ज्ञान भी है, तथापि भक्ति के काल में भगवान के सन्मुख नाचने लगता है।

कोई ऐसा कहे कि हमें तो कुदेवादि का निमित्त होने पर भी सम्यग्दर्शन हो ही गया, तो यह बात खोटी है; निमित्तरूप में सच्चे देव-गुरु ही होते हैं। कोई कहे कि अधूरी दशा में राग के समय पूजा-भक्ति आदि का शुभराग आता ही नहीं और निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता ही नहीं, तो यह भी असत्य है; उसे यथार्थ स्थिति का ज्ञान हुआ ही नहीं। पुनश्च छठवें गुणस्थान में मुनि स्वभाव में ठहर नहीं सकते, वहाँ तक पंचमहाव्रतादि तथा २८ मूलगुणों का पालन होता है। शरीर की नग्नदशा हुए बिना वस्त्रसहित मुनिपना माने तो विपरीतता है और शुभराग आता ही नहीं - ऐसा माने तो भी विपरीतता है। गणधरभगवान एक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करते हैं, वे भी भगवान की वाणी सुनते हैं। इस भाँति राग और निमित्त जहाँ जैसे होते हैं, उनका यथार्थज्ञान न करे तो तीर्थमार्ग का नाश होता है।

यदि कोई ऐसा माने कि अपूर्णदशा में शुभराग और निमित्तों के ऊपर लक्ष्य गया, इसलिए धर्म हुआ व आगे बढ़ेगा तो वह भी निश्चय को समझता नहीं है। पुण्य या निमित्त से धर्म नहीं है, धर्म तो अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से ही है; फिर भी पुण्य अथवा व्यवहार से धर्म माने तो तत्त्व का नाश हो जायेगा; क्योंकि व्यवहार और निश्चय - दोनों एक हो जाने पर दोनों का ही नाश हो जायेगा। अपने शुद्धस्वभाव के आधार से धर्म होता है, यह निश्चय है और अपूर्णदशा में स्वभाव में न ठहर सके तब तक राग आता है, वह बन्ध का कारण है, तथापि आए बिना रहता नहीं - ऐसा ज्ञान करना व्यवहार है। इसतरह निश्चय-व्यवहार - दोनों का एक साथ ज्ञान करना प्रमाणज्ञान है। जिसको प्रमाणज्ञान है, उसको ही नय होते

हैं, अन्य को नहीं होते।

अधूरीदशा में राग बिल्कुल है ही नहीं - ऐसा माने तो व्यवहार का नाश होता है, और राग आया, इसलिए धर्म हुआ - ऐसा माने तो निश्चय का नाश होता है। अतः जैसा है, वैसा यथार्थ ज्ञान करना चाहिए।

स्वभाव की आराधना करना, निरपराधभाव है और पुण्य व निमित्त की आराधना करना, अपराधभाव है।

इस गाथा में ऐसा कहा है :-

''जो जीव पुण्य की रुचि करता है, किन्तु सम्यक्-बोधस्वरूप आत्मा की आराधना नहीं करता; वह जीव अपराधी है। इसीलिए 'निरवशेषपने विराधन छोड़कर' - ऐसा कहा है अर्थात् समस्त प्रकार से पुण्य की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करे तो विराधन छोड़ा - ऐसा कहा जाय। जो परिणाम आराधनारहित है, वह विराधना है। अपने शुद्धस्वभाव की आराधना करना, निरपराधभाव है और पुण्य-पाप की आराधना करना, अपराधभाव है। चैतन्यस्वभाव की प्रसन्नता निरपराध है और निमित्त तथा पुण्य की प्रसन्नता अपराध है। चैतन्यस्वभाव की कृपा निरपराध है और निमित्त व पुण्य की कृपा से कल्याण मानना, अपराध है। चैतन्य से सिद्धि मानना, निरपराध है और पुण्य से सिद्धि मानना, अपराध है। ज्ञानस्वभावी से पूर्णता मानना, निरपराध है और पुण्य या अपूर्णता से लाभ मानना, अपराध है। आत्मा के आधार से आत्मा सिद्ध करना, निरपराध है और राग से आत्मा सिद्ध करना, अपराध है।''

इसप्रकार विराधनारहित जीव निश्चय प्रतिक्रमणमय है। जो आत्मा अपने स्वभाव में एकाग्रता करता है, वह प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है। वहाँ प्रतिक्रमण करनेवाला और प्रतिक्रमण की विधि - ऐसे भेद नहीं रहते। अज्ञानी जीव शास्त्र पठन करे; किन्तु अपनी दृष्टि से पढ़े और कहे कि निमित्त मिलाना चाहिए, पुण्य करना चाहिए - यह सब खोटी दृष्टि है। उलटी दृष्टि रखकर शास्त्र-वाँचन किया हो, उस पर पानी फेरकर गुरुगम से स्वलक्ष्यपूर्वक यथार्थ सुने-समझे, तभी काम बनेगा और तभी धर्म होगा।

(क्रमशः)

समयसार की 47 शक्तियों पर प्रवचन

जीवत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की 47 शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

जैसे कि आत्मा में अस्ति-सत्ता एक गुण है, इस अस्ति गुण का रूप अनन्तशक्तियों में है। ज्ञान है, दर्शन है, वीर्य है, ऐसे ही अनन्त गुणों में 'है-पना'- यह अस्तित्व गुण का रूप है। इसीप्रकार अनन्त शक्तियों का परस्पर एक दूसरे में रूप है।

इसप्रकार जीवत्वशक्ति का रूप प्रत्येक शक्ति में है। **जैसे ज्ञान जीवन्त, वीर्य जीवन्त। आ हा हा....! ऐसी अनन्त शक्तियाँ जिसका जीवन है, ऐसा भगवान आत्मा है।** भाई! तुझे उसकी पहचान नहीं है; तू अन्तरंग में दृष्टि कर तो निहाल हो - ऐसी अनन्त चैतन्य संपदा से तू भरा हुआ है।

यहाँ जीवत्वशक्ति कहकर आचार्यदेव तेरा सच्चा जीवन बतलाते हैं। हमको तो संवत् १९७८ में यह समयसार हाथ लगा, तब सहज ही ऐसा लगा कि **अहो! यह शास्त्र तो अशरीरी होने का परमागम है।**

भाई! ये शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियाँ, स्त्री, बच्चे तथा रुपया-पैसा बंगला आदि तो धूलधानी हैं। अज्ञानी जीवों को इनकी महिमा आती है। अहा! अन्दर में अनन्त-अनन्त चैतन्य लक्ष्मी का भण्डार आत्मप्रभु स्वयं विराजता है, उसकी प्रतीति जिन्हें नहीं होती, वे सभी जीव दुःखी हैं। **पैसेवाले को लोग सुखी कहते हैं, मगर वह भी महादुःखी है।**

अन्दर चैतन्य में लक्ष्मी स्वरूप स्वयं विराज रहा है, उसकी जो प्रतीति करे, अनुभव करे; वही वास्तव में श्रेष्ठ (सेठ) है। लोक में उसका जीवन

श्रेष्ठ है, बाकी तो सब कहने के सेठ हैं।

पैसे से कोई सेठ (श्रेष्ठ) नहीं हो जाता। प्रभु तुझे क्या हो गया है? **भगवान की दिव्यध्वनि में तो यह आया है कि द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रियों के विषय - इन सभी का लक्ष छोड़, ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा का अनुभव करके जिसने इन्द्रियों को जीता है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि है, वही श्रेष्ठ है।**

यहाँ भी यही कहा है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य - ये जीव के भावप्राण हैं। अन्तर्मुख दृष्टि करके ऐसे शुद्ध भावप्राण से जो जीता है, जीता था, जीवेगा उसे भगवान जीव कहते हैं; इसलिये बहिर्लक्ष छोड़कर अन्तर्मुख हो और यथार्थ जीवन प्रगट कर!

जिसमें शक्तियों का ऐसा शुद्ध जीवत्वरूप परिणमन होता है - जो समकिती जीव ऐसा ज्ञानानन्दमय, अनाकुल, प्रभुतामय जीवन जीता है, वही वास्तविक जीवन है।

आ हा हा......! जीव की जीवत्वशक्ति अनन्त शक्तियों में व्याप्त है, **उसे शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, भाव कहो; वह एक जीवत्वभाव सर्वभावों में व्याप्त है। जीवत्वशक्ति द्रव्य में व्यापक है, गुण में व्यापक है और शक्तिवान त्रिकाली ध्रुव द्रव्य की दृष्टि होते ही पर्याय में भी व्याप्त हो जाती है।**

अरे! अनादि से अज्ञानी जीव को निज शक्ति का भान न होने से उसकी पर्याय में जीवत्वशक्ति व्याप्त नहीं होती, विकार ही व्याप्त रहता है, उसे शक्ति का फल प्राप्त नहीं होता।

जहाँ शक्ति की महिमा लाकर शक्तिवान द्रव्य की दृष्टि की, वहाँ पर्याय में निर्मल जीवत्व प्रगट हो जाता है। जब ऐसा निर्मल ज्ञानानन्दमय जीवन प्रगट होता है तो तत्काल यह मान्यता छूट जाती है कि - 'मैं द्रव्यप्राणों से या अशुद्ध भावप्राणों से जीता हूँ।' व्यवहार प्राणों का भी आश्रय छूट जाता है।

ध्यान रहे, ये शरीरादि तेरे आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में भी नहीं व्यापते। ये पुण्य-पाप आदि विकार भी आत्मा के द्रव्य-गुण में नहीं व्यापते, मात्र एक समय की पर्याय में व्यापते हैं। सर्व पर्यायों में वे नहीं व्यापते। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : स्वरूप का अनुभव हुआ न हो और शुभ को हेय जानने लगे तो क्या स्वच्छन्दी नहीं हो जायेगा ?

उत्तर : शुभराग को हेय जानने से शुभराग छूटता नहीं है। स्वभाव का माहात्म्य आने पर शुभराग का माहात्म्य छूट जाता है; परन्तु शुभराग नहीं छूटता। शुभराग तो भूमिकानुसार अपने काल में आए बिना रहता नहीं। वस्तु के सच्चे स्वरूप का ज्ञान करने पर स्वच्छन्दता रह नहीं सकती।

प्रश्न : यह सत्य बात सुनने पर भी वर्तमान में धर्म प्राप्त न हो तो क्या करें ?

उत्तर : सत्य का श्रवणादि रसपूर्वक करता है, इसलिये उससे संस्कार पड़ते हैं, इन संस्कारों से धर्म प्राप्त होता है। भले अभी विकल्प न टूटे तो भी उसके संस्कार से भविष्य में धर्म प्राप्त होता है।

प्रश्न : गृहस्थ को पुण्य परिणाम का क्षय करना – ऐसा आप कहते हो ?

उत्तर : पुण्य परिणाम का क्षय तो जब शुद्धोपयोग पूर्ण हो, तब होता है। निचली भूमिका में तो पुण्य परिणाम का क्षय नहीं हो सकता; फिर भी पुण्य परिणाम हेयरूप है, क्षय करने लायक है – ऐसी दृष्टि प्रथम करनी चाहिये। पुण्यभाव हेय है, क्षय करने योग्य है; ऐसा जो नहीं मानता – वह मिथ्यादृष्टि है। निचली भूमिका में शुभभाव आए बिना रहता नहीं; फिर भी पहले दृष्टि में उसका निषेध होना चाहिए।

प्रश्न : जीव अभी (वर्तमान में) पुण्य-पाप करता है, उसका फल कब मिलता है ?

उत्तर : किये हुए पुण्य-पाप का फल किसी जीव को इसी भव में प्राप्त हो जाता है और किसी को अगले जन्मों में मिलता है। किसी को पुण्यभाव एवं पवित्रता की

विशेषता के बल से पूर्व के पाप संक्रमित होकर पुण्यरूप भी हो जाते हैं। इसीप्रकार तीव्र पाप से पूर्व का पुण्य पलटकर पापरूप भी हो जाते हैं। यह बात पूर्वबद्ध कर्मों की अपेक्षा से की है। जब परिणाम अपेक्षा से विचार करें तो पुण्य-पाप के भावों का भोग तो उन परिणामों के समय ही जीव को हो जाता है, उनकी मन्द-तीव्र आकुलता का तो उसीसमय जीव को वेदन हो जाता है। कोई जीव शुद्धता के बल से पूर्वबद्ध कर्मों को उनके फल मिलने से पहले ही छेद डालता है।

प्रश्न : कषाय को मन्द करे तो अन्तर्मुख होता है न ?

उत्तर : नहीं। संसार को कृष करे तो संसारातीत होवे। विष को हल्का करे – पतला करे तो अमृत होगा क्या ? पुण्य और पाप दोनों ही बन्ध का कारण हैं, विषरूप हैं, अमृत से विरुद्ध भावरूप हैं। उन दोनों में से किसी एक को ठीक और दूसरे को अठीक मानना, शुभ और अशुभ में भेद मानना, शुभ-अशुभ में कुछ अन्तर है – ऐसा मानना, यह सब घोर संसार में भटकने के कारण हैं – ऐसा कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं। भगवान आत्मा अमृतस्वरूप है, उसके सन्मुख होने का साधन वह स्वयं ही है, कषाय की मन्दता किंचित् मात्र भी साधन नहीं है। कषाय की मन्दतापूर्वक शुक्ललेश्या के भाव करके द्रव्यलिंगी नवमें ग्रैवेयक तक गया, तथापि मिथ्यात्व छूटा नहीं।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

25 से 30 अप्रैल	सोलापुर	समयसार विधान
1 से 6 मई	सूरत	समयसार विधान
20 मई से 6 जून	द्रोणगिरि	प्रशिक्षण शिविर
8 जून से 9 जुलाई	विदेश	तत्त्वप्रचारार्थ
12 से 21 अगस्त	जयपुर	महाविद्यालय शिविर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –

वेबसाईट – www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

समाचार दर्शन -

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

सागर (म.प्र.) : यहाँ सिटी रोड़, शंकर पैलेस में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के निर्देशन में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अंकुर कॉलोनी मकरोनिया-सागर द्वारा आयोजित श्री 1008 महावीर दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव रविवार, दिनांक 15 अप्रैल से शुक्रवार 20 अप्रैल 2018 तक अनेक मांगलिक कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के साथ अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के क्रमबद्धपर्याय के सन्दर्भ में 'गति अनुसार मति' विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. योगेशजी शास्त्री अलीगंज, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर, ब्र.महेन्द्रजी शास्त्री अमायन, ब्र. नन्हेभैया मोकलपुर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर आदि के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ।

महोत्सव ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रतिष्ठाचार्यत्व, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के मंच संचालन एवं पण्डित शांतिकुमारजी पाटील के निर्देशन में संपन्न हुआ। सह-प्रतिष्ठाचार्य के रूप में पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित सुबोधजी शाहगढ, पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल, पण्डित प्रियंकजी शास्त्री रहली, पण्डित विवेकजी शास्त्री दलपतपुर, पण्डित रमेशजी सनावद आदि अनेक महानुभाव उपस्थित थे।

बालक वर्धमान के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती मीना-अशोककुमारजी समगोरया, सागर को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री रवीन्द्रकुमार-सरिता जैन (सुपुत्र-पुत्रवधु पण्डित कोमलचंदजी टडा), कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी पण्डित निर्मलकुमार-निर्मला जैन एवं यज्ञनायक-नायिका श्री गुलझारीलाल-सुषमा जैन मकरोनिया थे। प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री सुखदयालजी डेवडिया परिवार केसली ने, प्रतिष्ठा मंच का उद्घाटन श्री देवचन्द विजयकुमार (विजय फाउंड्री), खुरई ने एवं प्रतिष्ठा मंडप के जिनालय का उद्घाटन श्रीमती प्रमिलाजी मकरोनिया ने किया। महोत्सव का ध्वजारोहण श्रीमती सपना-प्रतीश जैन, पटना के करकमलों द्वारा किया गया।

दिनांक 17 अप्रैल को बाल तीर्थंकर का सौधर्मादि इन्द्रों के पश्चात् सर्वप्रथम अभिषेक करने का सौभाग्य श्री राजेन्द्रकुमार अतुलकुमार सतभैया, सागर को मिला। सायंकाल 40 फीट का कांच से बना विशाल पालना दर्शनीय रहा, जिसका उद्घाटन इंजी. संजीवकुमार समरकुमार जैन सागर ने किया एवं श्री प्रेमचंदजी ध्याताजी बजाज, कोटा का विशेष

सराहनीय योगदान रहा। सर्वप्रथम आहारदान का सौभाग्य श्री राजकुमारजी गुलझारीलालजी कर्रापुरवाले मकरोनिया को मिला।

मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान के भेंटकर्ता भाईजी श्री राजेन्द्रजी, इंजी.आनन्दजी, इंजी. विक्रमजी जैन (खुरई वाले) मकरोनिया एवं विराजमानकर्त्ता श्री अजितप्रसादजी वैभवजी-विदेहजी, दिल्ली थे। श्री वासुपूज्य भगवान के भेंटकर्ता सिंघई रतनचंदजी निर्मलजी राजेशजी सुनीलजी परिवार मकरोनिया एवं विराजमानकर्ता श्री रमेशचंदजी प्रमोद विवेक अविनाश जैन मोदी परिवार रहे। श्री सीमंधर भगवान के भेंटकर्ता श्री राजकुमारजी गुलझारीलालजी मकरोनिया एवं विधिनायक भगवान महावीर स्वामी के भेंटकर्ता मुमुक्षु मण्डल मकरोनिया व विराजमानकर्ता श्री महावीर जिनालय मुमुक्षु परिवार परकोटा सागर थे।

संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, आध्यात्मिक गोष्ठियों, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत 'कौण्डेश से कुन्दकुन्द' नामक नाटक का मंचन वीतराग-विज्ञान पाठशाला गुना द्वारा तपकल्याणक के दिन किया गया। संपूर्ण कार्यक्रम में देश-विदेश से पधारे लगभग 1 हजार साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। महोत्सव में सत्साहित्य व सैंकड़ों सी.डी./डी.वी.डी. घर-घर पहुंची।

महोत्सव को सफल बनाने में समिति के समस्त पदाधिकारियों और अनेक नगरों के मुमुक्षु मण्डल व युवा फैडरेशन के सदस्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। •

नैरोबी में हुई धर्मप्रभावना

नैरोबी-केन्या (अफ्रीका) : यहाँ चैत्र माह के दशलक्षण पर्व के अवसर पर दिनांक 22 मार्च से 2 अप्रैल 2018 तक जयपुर से पधारे अन्तरराष्ट्रीय युवा विद्वान डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा प्रवचन-विधान-शिविर द्वारा अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: दशलक्षण विधान एवं गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन के उपरान्त डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा प्रवचनसार ग्रन्थ के 47 नयों पर मार्मिक प्रवचन हुए साथ ही सायंकाल कर्म-सिद्धांत पर सारगर्भित प्रवचनों का लाभ मिला।

यहाँ दो दिवसीय विशेष शिविर का भी आयोजन किया गया, जिसमें अर्थसहित नित्य-नियम पूजन, आलोचना पाठ का अर्थ, णमोकार महामंत्र, आचार्य कुन्दकुन्द एवं उनके परमागम, मनुष्यभव की दुर्लभता और आर्ट ऑफ लिविंग आदि विषयों पर मार्मिक व्याख्यान हुये।

दिनांक 29 मार्च को महावीर जन्मकल्याण दिवस के अवसर पर उनकी विशेष पूजन के साथ उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं व शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया। महावीराष्टक व महावीर वन्दना का पाठ एवं रात्रि में श्रेयसभाई राजा व विशाल जैन के निर्देशन में पाठशाला के बच्चों द्वारा ज्ञानवर्धक प्रस्तुति दी गई। समस्त कार्यक्रम श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में संपन्न हुये।

– हरीशभाई

महावीर जयन्ती सानन्द संपन्न

(1) जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में महावीर जयन्ती के अवसर पर दिनांक 29 मार्च को प्रात: ध्वजारोहण पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन, श्री कैलाशचंदजी सेठी, श्री चिन्मयजी जैन आदि के करकमलों द्वारा पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। सभी महानुभावों का तिलक लगाकर स्वागत किया गया। इस अवसर पर टोडरमल महाविद्यालय के सभी छात्र व वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल के सभी सदस्य उपस्थित थे। इसके पश्चात् प्रभात फेरी निकाली गई, जिसके अन्तर्गत श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल बापूनगर एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में समवशरण की झांकी सजाई गई, जिसे देखकर संपूर्ण जैनसमाज मंत्रमुग्ध हो गई।

जिनेन्द्र भक्ति एवं नृत्य-गान करते हुए रथयात्रा लालकोठी मन्दिर पहुँची, जहाँ ध्वजारोहण एवं कलशाभिषेक हुआ। इसके पश्चात् रथयात्रा पार्श्वनाथ चैत्यालय पहुँची, जहाँ ध्वजारोहण व कलशाभिषेक के पश्चात् आयाजित सभा में पण्डित शांतिकुमारजी पाटील के मार्मिक उद्बोधन का लाभ मिला। इसके पश्चात् रथयात्रा जयपुर शहर की मुख्य रथयात्रा में सम्मिलित हुई।

महावीर जयंती की पूर्व संध्या पर श्री वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल, बापूनगर द्वारा टोडरमल स्मारक में महावीर जन्म कल्याणक के उपलक्ष्य में संगीतमय भजन-संध्या का आयोजन किया गया।

(2) दुबई : यहाँ भगवान महावीर की जन्म जयंती अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक मनाई गई। नित्य-नियम पूजन के उपरांत भगवान महावीर की विशेष पूजनकर अर्घ्य चढाये गये। पूजन-विधि का संचालन स्थानीय विद्वान डॉ. नीतेशजी शास्त्री द्वारा किया गया।

इस अवसर पर अरिहंत जैन पाठशाला के बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये, जिसका संचालन अनुश्री जैन ने किया।

महावीर जयंती पर डॉ. भारिल्ल के विशेष व्याख्यान

मन्दसौर (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 28 मार्च को रात्रि में दिगम्बर-श्वेताम्बर सहित सम्पूर्ण जैन समाज की विशाल उपस्थिति में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा '**भगवान महावीर और उनकी अहिंसा**' पर मार्मिक व्याख्यान का लाभ मिला। तत्पश्चात् सभा के मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल द्वारा भी '**भगवान महावीर और उनके सिद्धांतों**' पर व्याख्यान हुआ।

दिनांक 29 मार्च को दोपहर 4 बजे नरसिंहपुर दिगम्बर जैन समाज की ओर से भगवान महावीर के जीवन पर डॉ. भारिल्ल का व्याख्यान हुआ।

दिनांक 30 मार्च को प्रात: मुमुक्षु मण्डल की ओर से आयोजित दिगम्बर जैन धर्मशाला के विशाल मैदान में डॉ. भारिल्ल का एक व्याख्यान णमोकार महामंत्र पर हुआ।

इन सभाओं में डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखित 'अहिंसा : महावीर की दृष्टि में' और 'वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर' नामक कृतियाँ धर्मप्रभावना के रूप में सभी साधर्मीजनों को वितरित की गईं। इसके अतिरिक्त 5000 घंटो की सी.डी./डी.वी.डी. भी अनेक साधर्मीजनों को वितरित की गईं।

मन्दसौर के पूर्व दिनांक 27 मार्च को भीलवाड़ा (राज.) जिनमंदिर में सायंकाल डॉ. भारिल्ल द्वारा '**गति अनुसार मति या मति अनुसार गति**' विषय पर व्याख्यान का लाभ मिला।

बाल एवं युवा संस्कार शिविर संपन्न

दाहोद (गुज.) : यहाँ नया महावीर मंदिर में दिनांक 14 से 18 अप्रैल तक बाल एवं युवा संस्कार शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री, पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री, पण्डित समकितजी शास्त्री, पण्डित प्रतीकजी शास्त्री द्वारा प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त प्रात:काल जिनेन्द्र-पूजन, सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति एवं रात्रि में वीतराग-विज्ञान महिला मंडल व पाठशाला के बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ।

दिनांक 17 अप्रैल को सायंकाल गुरुदेवश्री की जन्मजयंती के अवसर पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें पाठशाला के बच्चों द्वारा अत्यंत सुन्दर व रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। शिविर में लगभग 150 बच्चों के अतिरिक्त 250 साधर्मियों ने लाभ लिया।

स्थानीय विद्वान के रूप में पण्डित राकेशजी शास्त्री व पण्डित वीरेन्द्रजी शास्त्री का विशेष सहयोग रहा।

डॉ. संजीव गोधा को अर्हत्वचन पुरस्कार

इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा दिनांक 25 मार्च को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एवं ज्ञानोदय पुरस्कारों के साथ 2015 व 2016 के अर्हत्वचन पुरस्कार भी विशिष्ट समारोहपूर्वक प्रदान किये गये।

आयोजन में डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के लिये अर्हत्वचन पुरस्कार (वर्ष-2016) समर्पित किया गया। ज्ञातव्य है कि यह पुरस्कार आपके द्वारा लिखे गये 'पुद्गल द्रव्य एवं वैज्ञानिक आविष्कार' नामक शोध-आलेख के लिये प्रदान किया गया। साथ ही 2016 का यह पुरस्कार प्रो. प्रेमसुमनजी जैन उदयपुर एवं श्री सुरेशजी जैन आई.ए.एस. भोपाल को भी समर्पित हुआ। टोडरमल स्मारक परिवार की ओर से आपको हार्दिक बधाई।

टोडरमल स्मारक में गुरुदेव जयंती

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 22 अप्रैल को गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की जन्मजयंती के उपलक्ष्य में विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने की।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल थे, जिन्होंने गुरुदेवश्री की अनेक घटनाओं का स्मरण करते हुए उनके द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान व उसके विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार में उनके विशेष प्रभाव पर विस्तार से प्रकाश डाला। डॉ. भारिल्ल के अतिरिक्त मंचासीन ब्र. यशपालजी जैन, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, डॉ. दीपकजी जैन, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, श्री कैलाशचंदजी सेठी, श्री ताराचंदजी सौगानी, श्रीमती कमला भारिल्ल, कु.प्रतीति पाटील ने भी इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त किये।

इस अवसर पर रूपेन्द्र शास्त्री एवं शुभांशु जैन ने काव्य पाठ किया। सभा का मंगलाचरण समकित जैन एवं संचालन जिनकुमार शास्त्री ने किया।

गुरुदेव जयंती पर विशेष सभा

सागर पंचकल्याणक के अवसर पर जन्मकल्याणक के दिन दिनांक 17 अप्रैल को सायंकाल आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की जन्मजयंती के उपलक्ष्य में विशेष सभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने की।

सभा में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. महेशजी शास्त्री भोपाल, डॉ. योगेशजी शास्त्री अलीगंज, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर आदि ने गुरुदेवश्री के जीवन व तत्त्वज्ञान के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला। ब्रह्मचारी बहनों ने एवं पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल ने गुरुदेवश्री के जीवन से संबंधित गीत प्रस्तुत किया। अन्त में पूरे एक घंटे के अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. भारिल्लजी ने उनके उपलब्ध 9000 प्रवचनों को महान आध्यात्मिक निधि बताते हुए उन्हें वर्तमान युग में प्रतिदिन सैंकड़ों स्वाध्याय सभाओं में सुने जाने वाले सबसे अधिक प्रभावक व्यक्तित्व बताया।

सभा का संचालन संयमजी शास्त्री नागपुर एवं आभार प्रदर्शन पण्डित अरुणजी मोदी सागर ने किया।

शांतिविधान एवं प्रवचन संपन्न

टीकमगढ (म.प्र.) में दिनांक 15 अप्रैल को श्री अरविन्दजी शास्त्री एवं श्री संजयजी 'हल्ले' की माताजी के देहावसान के प्रसंग पर शांतिविधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डॉ. संजीवकुमारजी गोधा के प्रवचन का लाभ मिला। विधान के समस्त कार्य डॉ. गोधा के निर्देशन में पण्डित राजेन्द्रजी एवं पण्डित सम्मेदजी टीकमगढ के सहयोग से संपन्न हुये।

मानस्तंभ का शिलान्यास संपन्न

उदयपुर (राज.) : यहाँ सेक्टर-3 स्थित श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिन चैत्यालय में दिनांक 18 मार्च को सीमंधर लघु मानस्तंभ का शिलान्यास एवं आचार्य कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन का उद्घाटन हुआ।

इस अवसर पर पण्डित राजकुमारजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही पण्डित खेमचंदजी शास्त्री, डॉ. जिनेन्द्रजी शास्त्री एवं पण्डित ऋषभजी शास्त्री का भी उद्बोधन हुआ। कार्यक्रम का प्रारम्भ पण्डित गजेन्द्रजी शास्त्री व हितंकरजी शास्त्री द्वारा मंगलाचरण से हुआ। मानस्तंभ का शिलान्यास श्रीमती लीलादेवी रंगलालजी मेहता भूपेन्द्रजी जितेन्द्रजी मेहता परिवार द्वारा एवं स्वाध्याय भवन का उद्घाटन श्री रमेशकुमारजी दीपककुमारजी अंकितकुमारजी बोहरा परिवार द्वारा किया गया। ध्वजारोहण श्री विमलकुमारजी रटोडिया ने किया।

इस अवसर पर अनेक स्थानों से पधारकर साधर्मीजनों ने लाभ लिया। साथ ही स्थानीय विद्वानों की भी उपस्थिति रही। कार्यक्रम का निर्देशन एवं विधि-विधान के समस्त कार्य डॉ. महावीरप्रसादजी शास्त्री उदयपुर द्वारा संपन्न हुये।

वैराग्य समाचार

टीकमगढ (म.प्र.) निवासी श्रीमती पुष्पा जैन धर्मपत्नी श्री ज्ञानचन्द्र जैन का दिनांक 2 अप्रैल को 67 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में ज्ञानपुष्प परिवार की ओर से जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 500-500/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

डॉ. भारिल्ल का नया प्रकाशन

योगसार अनुशीलन

पृष्ठ - 240 मूल्य - 25 रुपये

सभी साधर्मीजन अवश्य लाभ लेवें।

आवश्यक सूचना

दिनांक 26 मार्च को वीतराग-विज्ञान में प्रकाशित सूचनानुसार इन्दौर में लगने वाला प्रतिष्ठाचार्य प्रशिक्षण शिविर को आगामी सूचना तक निरस्त समझा जाये।

ज्ञानस्वभाव पर विशेष संगोष्ठी

सागर (म.प्र.) : यहाँ पंचकल्याणक के अवसर पर केवलज्ञान कल्याणक के दिन दोपहर में 'ज्ञानस्वभाव' विषय पर दिल्ली निवासी श्री अजितप्रसादजी की अध्यक्षता में विशेष संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली ने ज्ञान का सामान्य स्वरूप, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील जयपुर ने ज्ञान के भेद–प्रभेद व उपयोगिता तथा डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर ने केवलज्ञान व श्रुतज्ञान में समानता विषय पर विचार प्रस्तुत किये। मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित प्रो. ए.डी. शर्मा (हरिसिंह गौड़ केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर) ने ज्ञान–ज्ञेय मीमांसा पर दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।

गोष्ठी का संचालन पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर ने किया।

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में

41वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर

(रविवार, दिनांक 12 अगस्त से मंगलवार 21 अगस्त, 2018 तक)

शिविर में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

शिविर में जयपुर आने हेतु अपने टिकिट शीघ्र करा लेवें। कृपया आवास आदि की समुचित व्यवस्था हेतु अपने पधारने की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें।

संपर्क सूत्र – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.) फोन : 0141–2705581, 2707458

विशेष ध्यान दें!
यह शिविर उपरोक्त तिथियों में जयपुर में संपन्न होना निश्चित है, अत: कोई भी किसी भी प्रकार के भ्रम में न रहे!

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनालयतन में विराजमान होने वाली महावीर भगवान की 33 इंची प्रतिमा

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2018-20*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली आदिनाथ भगवान की 33 इंची पंचधातु की प्रतिमा

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय, नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**